प्रथम हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन के सभापति
महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का भाषण[1]

मुझको बहुत से लोग जानते हैं कि मैं वाचाल हूँ लेकिन मुझको जब काम पड़ता है तब मैं देखता हूँ कि मेरी वाणी रूक जाती है। यही दशा मेरी इस समय हो रही है। प्रथम तो जो अनुग्रह और आदर आपलोगों ने मेरा किया है उसके भार से ही मैं दब रहा हूँ, इसके उपरान्त मेरे प्रिय मित्रों और पूज्य विद्वानों ने जिन शब्दों में मेरे सभापतित्व का प्रस्ताव किया है उसने मेरे थोड़े से सामर्थ्य को भी कम कर दिया है। सज्जनों! मैं अपने को बहुत बड़भागी समझता यदि मैं उन प्रशंसा–वाक्यों के सवे हिस्से का भी अपने को पात्र समझता जो इस समय इन सज्जनों ने मेरे विषय में कहे हैं। हाँ, एक अंश में मैं बड़भागी अवश्य हूँ। गुण न रहने पर भी मैं आपकी मंडली में गुणी के समान सम्मान पाता हूँ। इसी के साथ मुझको खेद होता है कि इतने योग्य और विद्वानों के रहते हुए भी मैं इस पद के लिये चुना गया। फिर भी मैं आपके इस सम्मान का धन्यवाद करता हूँ, जो आपने मेरा किया है। मेरा चित्त कहता है कि इस स्थान में उपस्थित होने के लिये हमारे हिन्दी संसार में अनेक विद्वान् थे और हैं जिनमें कुछ यहाँ भी उपस्थित हैं और जिनको यदि आप इस कार्य में संयुक्त करते तो अच्छा होता ओर कार्य में सफलता और शोभा होती। अस्तु, बड़ों से एक उपदेश मैंने सीखा है। वह यह है कि अपनी बुद्धि में जो आवे उसे निवेदन कर देना। मित्रों की आज्ञा, मित्रों की मंडली की आज्ञा पालन करना मैं अपना परम धर्म समझता हूँ। अनुरोध होने पर अंत में मैंने अपने प्यारे मित्रों से प्रेमपूर्वक निवेदन किया कि साहित्य सम्मेलन जिसका सभापति होने का सौभाग्य मुझे प्रदान किया गया है उसके कर्त्तव्य का पालन मेरा परम धर्म है। मैं आपसे दूर रहता हूँ। सो भी मैं कदाचित् निर्भय कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्य का रस पान करने में मुझको अन्य मित्रों की अपेक्षा कम स्वाद नहीं मिलता। उसके स्वाद लेने में मैं अपने किसी मित्र से पीछे नहीं। किन्तु अनेक कामों में रूका रहने के कारण मैं आपके बाहरी कामों का करने वाला सेवक हूँ। इस काम के लिए मैं अपने को कदापि योग्य नहीं समझता हूँ और इस अवसर में जिसमें आपको पूर्व उन्नति के उद्देश्यों को देखना चाहिए था, जिसमें हिन्दी की भावी उन्नति का पथ प्रशस्त करना चाहिए था, किसी और ही मनुष्य को इस स्थान में बैठना चाहिए था, इसके योग्य मैं किसी

[1] हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन का यह अधिवेशन नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में 10, 11, 12 अक्टूबर 1910 ई0 को हुआ था।

प्रकार नहीं। अब यदि मैं इस स्थान में आकर आपकी आज्ञा पालन करने का यत्न न करूँ तो उससे अपराध होता है। केवल इसी कारण मैं इस सम्मान का धन्यवाद देता हूँ और इस समय इस स्थान में आप लोगों की सेवा करने को तैयार हुआ हूँ।

हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन के विषय में जो मतभेद हो रहा है, जैसा कि मेरे प्रथम वक्ता महाशय ने कहा, इसमें कोई संदेह नहीं, उसे स्वीकार करना चाहिए। हठधर्मी अच्छी नहीं। अनेक विद्वानों के मत से यह समय सम्मेलन के लिए उपयुक्त नहीं। नवरात्र दुर्गा देवी के पूजन का समय है, नवरात्र में सरस्वती शयन करती हैं। प्राचीन रीति के अनुसार तीन दिन सरस्वती शयन के दिन हैं। यह नियम आर्यजाति ने इसलिये रखा कि तीन सौ सत्तावन दिन संसार के व्यवहार करो, अपने मस्तिष्क को पीड़ा दे लो, किन्तु जाति की रक्षा के लिए उन तीन दिनों में लेखनी मत उठाओ, पत्रा मत पढ़ो, इन दिनों सरस्वती शयन करती है। ऐसे समय में मेरे मित्रों ने आप महाशयों को इधर–उधर से खींचकर बुलाया है और इसके लिये मेरी बुद्धि में आता है कि मुझको आपके सामने उनकी ओर से उत्तर देना चाहिए। इसमें मैं इतना ही कहूँगा कि जितना मतभेद हो उसे आपको स्वीकार करना चाहिए और जिन लोगों का मत नही मिलता उनके मत का आदर करके उनसे यही कहना चाहिए कि अब से यह समय उन्नति का होगा। इसके विचार में यह मेरी बुद्धि में आता है कि हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन के लिये यह समय बहुत ही उपयुक्त है। हिन्दी की दशा इस समय शोचनीय हो रही है। हिन्दी साहित्य के इस शयन की अवस्था में सरस्वती शयन कैसा? इस ध्यान से हमारे हिन्दी प्रेमियों में बहुत से लोगों का यदि यह विचार है कि सरस्वती शयन कर रही हैं तो इससे क्या होता है? हमलोग इस सम्मेलन में उपयुक्त यत्न कर सरस्वती को जगाएँ। बात भी ऐसी ही है। जहाँ रात होती है वहीं सूर्यनारायण की लालिमा दिखाई देती है। रात के अंधकार के पश्चात् प्रातःकाल होता है तो उसको देखना अच्छा लगता है। ऐसी अवस्था में इस सरस्वती शयन का समय मुझको आशा देता है कि हिन्दी भाषा के शयन के समय में जब साहित्य सम्मेलन होता है तब इस सरस्वतीशयन के समय के उपरान्त जैसे विजयादशमी का दिन आता है वैसे ही, मुझको विश्वास है कि सोई हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य के जागने का समय निकट है। प्राचीन समय से लोग दुर्गा–अष्टमी में विद्या की वृद्धि के लिये देवी की उपासना करते आते हैं। जिस तरह पहले उसी तरह आज भी हिन्दुस्तान में हिमालय के ऊँचे शिखर और लंका के छोर तक सहस्रों करोड़ों हमारे भाई इस नवरात्र में दुर्गा जी की स्तुति करते हैं। एक ही विद्या है, एक ही

भाव है, केवल भाषा इसे पृथक् करती है। तो इससे क्या हो सकता है जब हम अपनी भाषा के साहित्य की उन्नति के दुःख में पड़े हुए हैं तब हमें क्या उचित नहीं कि इसकी उन्नति के लिए सब तरह के यत्न करें और उनके फल उपलब्ध कर उनका प्रकाश करें? (हर्षनाद) मुझे आशा और विश्वास है कि आपके चित्त में मेरी बातें आ गई होगी। और बातों में यह बात भी निवेदन करना है कि इसके उपरान्त विजयादशमी का दिन आता है। यह विजयादशमी वही विजयादशमी है जिसमें भगवान् रामचन्द्र जी ने राक्षसों का नाश करके देश में फिर से सुखशांति की मंदाकिनी बहाई थी। यह वही विजयादशमी है जिसकी गूँज आज भी हिन्दुस्थान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सुनाई पड़ती है, जिसकी प्रतिमा का अनुकरण आज भी हिन्दुस्थान के नगर में लीलाओं द्वारा किया जाता हे। देशी राज्यों में उसका अनुकरण किया जाता है जो कुछ पहले होता था, वही आज भी हो रहा है। पुराने समय में भगवान् रामचन्द्र जी ने किया, अब वह देशी राज्यों में होता है। वही मारू बाजा बजता है, वही आर्यों के राजा महाराजाओं के विजय का डंका बजता है। अब विजय नहीं है, उसका शब्द है उसे तो सुन लीजिये। आज भी केसरिया जामा पहिन राजे महाराजे अपने–अपने गढ़ों से निकलते हैं। शक्ति के बढ़ाने में आज भी इस समय की प्रतिमा आपको दिखाई देती है। शक्ति ही ने यह बातें की और मेरे दुर्बल शरीर और चित्त में बल का संचार किया। मैं आशा करता हूँ कि मेरे और भाइयों के चित्त में भी इसी तरह बल का संचार हुआ होगा। ऐसी दशा में हम लोग मिले हैं। मैं आशा करता हूँ कि जो विरोध इस समय के ठन जाने का हुआ है उसको अब इसी वक्तृता के साथ समाप्त कर दीजिये। हम सब यही आशा करते हैं कि संकट के समय में बड़े कार्य हो जाते हैं और इस दृष्टि से जो कुछ भूल चूक हुई हो उसको भुलाकर एक स्वर से, एक उद्देश्य से, हिन्दी की उन्नति के विचार से सम्मेलन होना चाहिए।

सम्मेलन हुआ है सम्मेलन के लिये। इसमें विजयादशमी का उत्सव मनाने का कुछ प्रयोजन नहीं। इन दिनों जितनी लीलाएँ होती हैं, उनका उद्देश्य यही है कि एक दिन भारतवर्ष में ऐसा था कि विजय का डंका बजता था। इस दशहरे में इस सम्मेलन का भी यही उद्देश्य है और बहुत कुछ संभावना इस बात की होती है कि कोई रोग इस देश में यदि आ गया हो तो सब एकत्र हो उसे मिटाने का प्रयत्न करें। गाँव–गाँव और जिले–जिले के बाहर लोग एक स्थान में बैठकर परामर्श करें कि किस प्रकार ऐसी बला टल सकती है। दूसरा सम्मेलन इस श्रेणी का होता है कि काम चल रहा है लेकिन अच्छी

तरह नहीं चल रहा है इसलिये यद्यपि कुछ संतोष का विषय है तथापि विशेष रूप से एकत्र होकर इस बात का विचार किया जाता है कि कार्य कैसे चले। मेरी बुद्धि में तो हिन्दी का ऐसा सौभाग्य नहीं है। हमलोग वर्तमान समय में जो मिले हैं वह इस दूसरी श्रेणी का सम्मेलन है। कुछ लोगों के मत में हमारी उन्नति कुछ भी संतोषजनक नहीं है। अन्य लोगों के विचार ऐसे हैं कि यह कहना ठीक–ठीक है। फिर भी प्रत्येक दशा में यह सम्मेलन आवश्यक हो गया है। अब इस सम्मेलन में यदि हम मिले हैं तो दूसरी या तीसरी कक्षा, जिसको ले लीजिये, उसी के अनुसार पहले यह विचार कीजिये कि हमारी अवस्था क्या है। जब कोई वैद्य बुलाया जाता है तब निर्दिष्ट स्थान में पहुँचकर पहले वह यह जानना चाहता है कि रोगी की दशा क्या है, रोग कहाँ तक बढ़ा है, कितनी आशा है, कितना घटा है, रोगी में कितना बल आया है। यह आवश्यक है कि हम पहले हिन्दी की दशा विचारें। किन्तु इससे पहले कि हम इस बात का विचार करें हमारे एक मित्र ने प्रश्न किया है कि पहले यह तो बतलाइए कि हिन्दी है क्या? यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न उठा है कि हिन्दी क्या है। ऐसी दशा में पहले मैं इसी को लेता हूँ। मुझको दुःख है कि मैं न संस्कृत का ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषय में प्रमाण के साथ कह सकूँ, न भाषा का ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषय की चर्चा चलाऊँ। किन्तु मैं आपके सम्मुख निवेदन करता हूँ कि जब प्रमाण की रीति से कोई कुछ न कह सके तो उसका धर्म है कि वह अपने विचारों को उपस्थित करके जो प्रमाण दे सकता हो उन्हीं को दे। हिन्दी के विषय में बहुत सा विवाद है। हिन्दी के संबंध में हमारे देश के लिखनेवालों में जो हुए वह तो हुए ही, हमारे यूरोपियन लिखनेवालों में विलायत के डाक्टर ग्रियर्सन एक बड़े शिरोमणि हैं (हर्षध्वनि) । आपने हिन्दी की बड़ी सेवा की है और हिन्दी की उन्नति में बड़ा यत्न किया है। आपने एक स्थान में लिखा है कि हिन्दी यूरोपियन सन् 1803 ई0 के लगभग लल्लूलाल जी से लिखवाई गई। और भी लोगों ने इसी प्रकार की बात कही है। जो विदेशी हिन्दी के विद्वान् हैं, वह तो यही कहते आए हैं कि हिन्दी कोई भाषा नहीं है। इस भाषा का नाम उर्दू है। इसी का नाम हिन्दुस्तानी है। यह लोग यह सब कहेंगे, किन्तु यह न कहेंगे कि यह भाषा हिन्दी है (लज्जा)। लज्जा तो कुछ नहीं है, विचार की बात है सज्जनों! ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित कितने ही अँगरेज अफ्सरों ने मुझसे पूछा था कि हिन्दी क्या है? इस प्रान्त की भाषा तो हिन्दुस्तानी है। मैं यह प्रश्न सुन दंग रह गया। समझाने से जब उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब मैंने कहा कि जिस भाषा को आप हिन्दुस्तानी कहते हैं, वही हिन्दी है। अब आप कहेंगे कि इसका अर्थ क्या

हुआ? इसका अर्थ यह है कि न हमारी कही आप मानें, न उनकी कही। इसमें न्यायपूर्वक विचार कीजिए। डाक्टर ग्रियर्सन का क्या कहना है। मैं उनका सम्मान करता हूँ किंतु उनकी बात पर न जाकर हमें यह देखना चाहिए कि यथार्थ तत्व क्या है? यहाँ इस मंडली में बड़े–बड़े विद्वान् और विचारवान् पुरूष हैं, वह इसे अच्छी रीति से कह सकेंगे। इसके विचारने में हमको अपने विचारों का दिग्दर्शन करना चाहिए। इसमें बहुत कुछ अंतर हो सकता है। किन्तु मूल में कोई अंतर हो नहीं सकता। हिन्दी भाषा के संबंध में विचार करते हुए सबसे पहले संस्कृत की आकृति एक बार ध्यान में लाइए, हिन्दी भाषा की आकृति को ध्यान में लाइए। इसके पीछे आप विचारिए कि हिन्दी कौन भाषा है और उसकी उत्पत्ति कहाँ से है। संस्कृत की जितनी बेटियाँ हैं इनमें कौन सी बड़ी बेटी है। संस्कृत की बेटियों में हिन्दी का कौन सा पद है। इसका संस्कृत से क्या संबंध है। संस्कृत, जैसा कि शब्द कहता है, नियमों से बाँध दी गई है। जो व्यर्थ बातें थी, वह निकाली गई, अच्छी–अच्छी बातें रखी गई, नियमों और सूत्रों से बँधे शब्द रखे गए, जो शब्द नियमविरूद्ध थे उनके लिये कह दिया गया कि यह नियम से बाहर है। नियमबद्ध शब्दों का व्याकरण में उल्लेख हो गया। आप जानते हैं कि संस्कृत से प्राकृत हुई। जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत कभी बोली नहीं जाती थी, वह संस्कृत को नहीं जानते। वे थोड़ी, प्राकृत पढ़े तो उनको मालूम हो जायेगा कि प्राकृत तो बोली जा नहीं सकती। संस्कृत के बोले जाने में कोई संदेह नहीं। संस्कृत से प्राकृत हुई। उसके पीछे सौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। कदाचित् आपके ध्यान में होगा कि दंडी 8वीं शताब्दी में थे। अपने समय में उन्होंने यह लिखा था कि भारत में चार भाषाएँ हैं, महाराष्ट्री, सौरसेनी, मागधी और भाषा । यही चार भाषाएँ चली आई हैं।

अब आपको मालूम हो गया होगा कि जो महाराष्ट्री भाषा थी, मागधी भाषा थी, इनके बीच में बहुत भेद था। मेरे शब्दों पर ध्यान दीजिए इन भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्दों के रूप का अनुरूप आपको मिलता है। यह जितना हिन्दी भाषा में मिलता है, उतना दूसरा किसी भाषा में नहीं मिलता। संस्कृत के शब्दो ंको ले लीजिए। अब देखिए कि हिन्दी में यह बात कहाँ से आई। संस्कृत से इन भाषाओं का क्या संबंध था। शंकुतला में 'तुक मणि दबे बलीयममणाणि' कहाँ से आया होगा। एक शब्द को आप लीजिए। उसको देखिए कि प्राकृत में उसका क्या रूप है और भाषा में क्या हुआ। इस प्राकृत को देखने से आपको मालूम होगा कि संस्कृत शब्दों का प्राकृत रूप क्या से क्या हो गया। भाषा के कितने ही

रूप आपको मिल सकते हैं। परन्तु यह बात मेरे कहने से न मानिए। मेरे सामने इस समय चंद कवि के रासों में बहुत से रूप ऐसे हैं जिनको इस मंडली में पंडित सुधाकर जी और दो तीन को छोड़कर बहुत कम लोग जानते हैं। मैं तो इसका चौथाई भी समझ नहीं सकता। मैं जो देखता हूँ वह आपके सामने उपस्थित करता हूँ। आप ही देखकर यह कहें कि कौन ठीक है। संस्कृत से पाली, पाली से प्राकृत और प्राकृत से तीसरा रूप हिन्दी दिखाई दिया। अब आप थोड़े से शब्दों पर विचार करें। अग्नि का आग और योग का याग हो गया। चंद के काव्य में तुलसीदास की एक चौपाई को बीच में यदि मैं रख दूँ तो बहुत सज्जनों को यह न मालूम होगा कि दोनों के बीच कितना अंतर है। संवत् 1125 में चंद कवि ने इसको लिखा। उनकी भाषा में जितने रूप देखते हैं वह रूप इस भारतवर्ष की किसी दूसरी भाषा के रूप से नहीं मिलते। मिलते हैं, हिन्दी से और उतने ही जितनी आज की अंग्रेजी चौसर की अंग्रेजी से मिलती है। ऐसी दशा में यह कहना कि हिन्दी भाषा क्या है, इसका उत्तर यह है कि हिन्दी भाषा वह है जिसमें चंद कवि से लेकर आज तक हिन्दी के ग्रन्थ लिखे गये। यह सही है कि पहले इसका नाम भाषा था, हिन्दी भाषा या सूरसेनी।

क्या आप भाषा की उत्पत्ति पूछते हैं। कितने ही लोगों को अपनी माँ का नाम नहीं मालूम । बहुत सी औरतें ऐसी हैं जिनको अपने लड़कों का नाम नहीं मालूम। प्रयाग और बनारस के कितने ही बालकों का नाम सिर्फ बच्चा है। पिता और दादा के नाम का पता लगाना और भी कठिन है। नाम रखते हैं किन्तु उसको याद नहीं रखते। अस्तु, देखना चाहिए कि चंद के समय से जो भाषा लिखी जाती है वह एक है, उसी को हम हिन्दी भाषा कहते हैं। कभी–कभी लोग उसका नाम बदल देते हैं। भीष्म को लीजिए देवव्रत उनका नाम था। जब उन्होंने पिता की प्रसन्नता के लिये राज्यत्याग किया, ब्रह्मचर्य अंगीकार कर कहा कि हम विवाह न करेंगे, केवल इसलिये कि पिता प्रसन्न होंगे, तब उस दिन से उनका नाम भीष्म हुआ, छठी के समय नहीं हुआ था। इसी तरह भाषा का भी नाम बदलता है। पहले कुछ था, अब कुछ है। भाषा का नाम पहले और था पर अब तो हिन्दी कह के इसे पूजते हैं, प्रेम करते हैं। इस हिन्दी भाषा का दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होगा कि हिन्दी भाषा की और भाषाओं के साथ तुलना करने से क्या पता लगता है। इसमें भी मैं इतना कहूँगा कि हिन्दी सब बहनों में माँ की बड़ी और सुघर बेटी है। संस्कृत के वंश की बेटियों के 22 करोड़ बोलने वाले हैं, उनमें पाँच या छः करोड़ मद्रास में तामिल और तेलगू बोलते हैं। उनकी भाषा में संस्कृत का भण्डार भरा हुआ है, उनके वाक्यों में संस्कृत की लड़ी आती

है। फलतः संस्कृत की महिमा इस देश में गाज रही है और बहुत दिन तक गाजेगी। अब रहा कि इस बहनों में कौन बड़ी और कौन छोटी है। यह पक्षपात है कि हमारी भाषा हिन्दी है और हम हिन्दू है, हिन्दी का पक्ष करें या हमारा यह विचार है कि (छोटे मुँह बड़ी बात है, मगर चित्त में जो कुछ है कह देंगे) दंडी कवि ने भी उसमें पक्षपात किया है। किन्तु हिन्दी भाषा को यदि मैं आपके सामने यह कहूँ कि यही सब बहनों में माँ की अच्छी पहली पुत्री है, अपने पिता और माता की होनहार मूर्ति है, तो अत्युक्ति न होगी। सौरसेनी में शब्द बंधे हुए हैं, फलते नहीं, महाराष्ट्री में उखड़ते पुखड़ते नाचते कूदते जाते हैं। आपको अनेक शब्द हिन्दी भाषा में मिलते हैं जिनके सात–सात रूप हैं। भारतीय सभी भाषाओं में हिन्दी शब्दों की न्यूनाधिक झोली की झोली भरी पड़ी है। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि इनके रूप में बड़ा परिवर्तन है। जैसे कि बनारस से नीचे बंगाल में चलिए तो आगे चलकर बिहार में बिहारी मिलेंगी, बंगाल में जाइये तो लकारों का संगीत पाया जाता है। हरिद्वार से जब गंगा चलीं और उनके संग में जो पत्थर के टुकड़े बहते हुए चलें तो हरिद्वार से काशी आते–आते रगड़ते झगड़ते कोमल और चिकने हो गए। इसी प्रकार यह बिहार में गाजीपुर और बनारस से नीचे रगड़कर प्रिय कोमल स्वरों के हो गए। जब आप बंगाल में पहुँचे तब आपको कोमलता का घर मिला। वहाँ आप की भाषा भी अधिक कोमल दिखाई दी। यहाँ की भाषा का रूप देख हमारे यूरोपियन विद्वान् और देशी विद्वान् भी भ्रम में पड़ गए हैं कि क्या हिन्दी महाराष्ट्री और सौरसेनी, पंजाबी और बंगला, सब वस्तुतः एक हैं। हमें भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि इनके बीच बड़ा अंतर हो गया है। संस्कृत शब्दों का हिन्दी ही में कितना परिवर्तन हो गया है। जो कर्ण था वह कान, नासिका थी वह नाक है, जो हस्त था वह हाथ है। पानीय का पानी है। यह परिवर्तन सभी जगह दिखाई देता है। लक्ष्मी को भाषावालों ने लिखा लच्छमी या लक्खी। लच्छमी कहने में जो प्रेम आया वह लक्ष्मी कहने में नहीं। जैसे–जैसे भाषा बंगाल की ओर बढ़ी वैसे–वैसे कहा गया कि इसमें जितना कर्कशपन है उसे काट दो। अब बेटियों में बड़ा रूपांतर हुआ। यहाँ तक यह कह दिया कि भाषा की उत्पत्ति क्या है। सिवाय इसके यह निवेदन करता हूँ कि जितने और प्रमाण हैं जिनसे भाषा की अवस्था को जान सकते हैं, अब उसको जाँचना चाहिए। भाषा के रूप की शब्दमाला क्या है? इन दोनों के विचारों से हिन्दी भाषा ही प्राचीन है। डॉक्टर ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि हिन्दी संस्कृत की बेटियों में सबसे अच्छी और शिरोमणि है।

आप कहेंगे कि इसमें कौन फूहड़ मालूम होती है। यह मेरा कहना आवश्यक भी नहीं है। यह समझा जा सकता है कि मैं हिन्दू हूँ और पक्षपात से कहता हूँ।

आज मैं अपने बंगाली हिन्दुस्थानी गुजराती भाइयों से पुकार कर कहता हूँ कि भाषा एक चली आई और संस्कृत भी एक है। जब प्राकृत हुई तब अंग की प्राकृत हो गई किन्तु मूल में एक ही रही। जितनी भाषाएँ हैं, हमारी हैं। बंगाली हमारी भाषा, पंजाबी हमारी भाषा और गुजराती हमारी भाषा है। अब इसके विचार से कौन किसको कहे कि कौन बुरी है।

हिन्दी अपनी बहनों में सबसे प्राचीनतम और बड़ी बहन है और माता की रूप आकृति इससे बहुत मिलती–जुलती है। यह सब जो बड़ी–छोटी बातें मैं आपसे निवेदन करता हूँ इसका दूसरा प्रमाण मिलना चाहिए। शब्दमाला, शब्दों की रचना यह तो हो गया। दूसरा प्रमाण है ग्रन्थमाला। अधिक हिन्दी ग्रन्थमाला का, भाषाओं की ग्रन्थमाला का शिवसिंह जी ने जैसा कि मालूम होगा, इन बातों को दिखाया है। प्रथम हिन्दी भाषा का काव्य 770 में हुआ। भाषा के ग्रन्थों में राजा मान की सहायता और आदेश से दूसरा जो हमें मिलता है, वह पूज्य कवि 802 में हुआ और तीसरा लेख जो मिलता है, वह राव खुमान सिंह ने एक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा। 900 में खुमानरासो, पृथ्वीराजरासो प्रसिद्ध किया। चौथा ग्रन्थ, जैसा कि मैं अभी आपसे निवेदन कर चुका हूँ, चंद कवि कृत रासो है। जो भाषा के विद्वान् हैं और जो भाषा की रूपरचना जानते हैं, वह बिना शंका के यही कह देंगे कि जिस भाषा में चंद कवि ने ग्रन्थ लिखा है वह भाषा बहुत पहले से हुई है। यह नहीं हो सकता कि जिसकी भाषा प्रिय होने लगी उसी में ग्रन्थ लिख डाला। चंद कवि से पहले अनेक कवि हो चुके थे। उन्होंने उर्दू में लिखा, हिन्दी में नहीं। हिन्दुओं में ब्राह्मण और कायस्थ उर्दू अधिक पढ़ने वाले थे। पर हमारे क्षत्रिय भाइयों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उनमें पढ़ने का प्रचार कम हुआ। वह इसके बदले जमींदारी और खेतीबारी में रहे और उसी से प्रेम रहा और विद्या को कम पढ़ा। वैश्य जो हमारे भाई हैं, उन्होंने कहा, कि जिसको नौकरी करना हो वह पढ़ने जाय, उन्हें इतनी फुरसत कहाँ। वह दूसरी ओर उन्नति करते रहे। आप को उर्दू के ज्ञाता मिलेंगे– ब्राह्मण और कायस्थ। ब्राह्मणों में काश्मीरी ब्राह्मण बुद्धि में प्रखर, भाषा के विशेष योग्य थे। इनका प्रेम उर्दू की ओर बढ़ गया और वे इसी तरफ झुके। कायस्थ भाइयों का भी यही हाल हुआ कि सरकारी दफ्तरों में उर्दू गाज रही थी, हिन्दी सभ्य भाषा भी नहीं समझी जाती थी। हमारे पंडित मथुराप्रसाद, राजा शिवप्रसाद कह गए हैं कि हिन्दी भाषा को यह कहना कि हिन्दी कोई भाषा ही नहीं अनुचित है। यह

दशा थी। इसी कारण से हिन्दी की उन्नति न हुई। अब क्या होता है। इस बीच में और और प्रान्तो में उन्नति हुई। बंगाल में जैसा कि मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ, भाषा का बड़ा सुधार हुआ। एक अंश में सर माइकल मधुसूदन को लीजिए। हेमचन्द्र बंकिमचन्द्र इत्यादि बंगाली बड़े–बड़े कवि हुए हैं। उन्होंने उपन्यास, इतिहास, और काव्य से अपनी भाषा को बनाया, सजाया। इसके उपरांत कबीरदास हुए, 1540 में मलिक मुहम्मद जायसी हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी, श्री केशवदासजी, दादूदयालजी, गुरू गोविन्द सिंहजी, बिहारीलाल को ही देखिए। हर एक की भाषा में हिन्दी के पुष्ट रूप दिखलाई पड़ रहे हैं। यह सिद्ध है कि भाषाओं में मरहटी भाषा में, जो सबसे पुष्ट है, नामदेव 13वीं सदी में थे। बंगला भाषा में, जिसे आज देखकर आनंदित होते हैं और यदि सच कहूँ तो ईर्ष्या भी होती है, चंडीदासजी बड़े प्रसिद्ध 14वीं सदी में हुए। चंद के समय तक मराठी में, न बंगला में, न गुजराती, में तीनों में इतना बड़ा काव्य नहीं था जितना बड़ा काव्य चंद कवि का हिन्दी में मिलता है। इस प्रकार से हिन्दी भाषा आरम्भ हुई। यदि यह जानना चाहते हैं कि किसका भण्डार किसका रूप और कौन अधिक थी, तो इसके देखने के लिए मैं आपके सम्मुख कुछ बातें उपस्थित करता हूँ। यह जो सन् 1857 ई0 में विप्लव हुआ, उस समय से भाषाओं की और उन्नति हुई। 1835 ई0 में बंगाल में, पंजाब में फारसी भाषा दफ्तरों में थी। अँगरेजी गवर्मेण्ट ने इसको मिटाकर मराठी, गुजराती, बंगाजी और उर्दू को इनके स्थान में किया। वहाँ से देशी भाषाओं की उन्नति की रेखा बँधी। अब इस बात का विचार कीजिए कि सन् 1835 के पूर्व और 1858 के उपरान्त इन सब भाषाओं का कैसा भाण्डार था, इनमें ग्रन्थमाला कैसी थी? 770 से लेकर आप केवल बड़े–बड़े कवियों को लीजिए। उनके ग्रन्थ आज तक हिन्दी भाषा का भाण्डार भर रहे हैं। चंद कवि के रासो को ले लीजिए। लल्लूजी, कबीरदास, गुरू नानक जी, मलिक मुहम्मद जायसी, भीमदेव, तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप, केशवदास, दादूदास, गुरू गोविंदसिंह जी, बिहारीलाल, किस किसके नाम गिनाऊँ। मुझे सब गिनाना भी नहीं। बिहारीलाल को ले लीजिए। इन्होंने 1650 के लगभग ग्रन्थ लिखा है। बहुत वृक्ष वाटिकाओं में उगते हैं, कितने ही आपसे आप उगते हैं, उनका झाड़ भी बड़ा फैला हुआ होता है। जैसे–जैसे वे ऊपर उठते हैं वैसे–वैसे उनकी छाया अधिक होती जाती है। कुछ ऐसे होते हैं, जिनको आप काटकर मट्टी बनाकर किसी स्थान में लगाते हैं और अपनी वाटिकाओं में उगाते हैं। इसी तरह भाषा में जो बहुत शब्द हैं, जैसे कर्ण से कान, हस्त से हाथ संस्कृत से उत्पन्न हुए हैं वे प्राकृत रूप में अपने से आप

उपजे। जो शब्द संस्कृत के उठाकर रख दिए हैं, वह वैसे ही हैं जैसे कि गुच्छा, कितने ही वृक्ष थोड़े समय में सूख जायँगे, फिर उनमें शक्ति नहीं कि वह दूसरे फल उत्पन्न करें। जहाँ यह मुरझाए, फिर इन्हें हटाना ही पड़ेगा। इसी प्रकार से हिन्दी भाषा के तद्भव शब्द जो हैं वह निज की संपत्ति हैं, उनके निज के अवयव पुष्ट हैं, वह फूलें फलेंगे और अपने आप बढ़ते चले जायँगे। यह सब प्रबल और पुष्ट होते हैं। किन्तु जिन शब्दों में किसी का पैबंद लगा दिया जाता है, वह बनने को बन जाते हैं किन्तु पुष्ट नहीं होते। जो लिए हुए शब्द हैं, उनमें भाषा की शक्ति नहीं। बच्चा माता के दूध से जितना पुष्ट होता है, ऊपरी दूध से उतना पुष्ट नहीं होता, जो बच्चा धीरे–धीरे माता का दूध पीता है वह पुष्ट होता जाता है और अंत में संसार में काम करने योग्य होता है। फिर भी हरेक भाषा में हर एक तरह के शब्द मिलेंगे ही, जैसे भोजन में दाल भात रोटी इत्यादि। और संस्कृत की जितनी बेटियाँ हैं, वह सब भी माँ के गहनों को पहनेंगी, चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा, सब माँ का गहना है। उनमें एक गहना दो गहना चार गहना माँ का है। माँ के गहने से बड़ा प्रेम होता है। उस समय उनको धारण करने में विशेष आनन्द होता है। किन्तु जो सब गहने माँ के ही हों तो सब कहेंगे कि यह सब माँ की संपत्ति है। इसलिये हिन्दी भाषा का यह सौभाग्य है कि उसके जो शब्द हें वह सब माता के ही प्रसाद हैं। किन्तु माता ने कहा, हे बेटी! यह तेरे हैं, तू इसका व्यवहार करना। बिहार में बंगाल में विद्यापति जी ने हिन्दी भण्डार से फूल पत्ते ले जाकर अपने काव्यग्रन्थ को भरा है। इस प्रकार आप देखेंगे कि दक्षिण में मराठी में भी जो शब्द का मेल हैं, उसमें जो कुछ तद्भव शब्द व्यवहार में लाए जाते हैं वह यहीं के हैं। हम आप 'मुझ, तुझ' कहते हैं मराठी में 'मुझा तुझा' कहते हैं। हाँ यह मानना पड़ेगा कि इन शब्दों का उच्चारण बंगाल में और है, महाराष्ट्र में और। हमें इस बात की ईर्ष्या नहीं है, अगर वह सबकी माँ नहीं तो मौसी है। हम तो सबके बालक हैं। सबके पैरों पर लोटेंगे। माँ ने भोजन दे दिया तो ले लेंगे, मौसी ने दे दिया तो ले लेंगे। वह हमारी, हम उनके हैं। आप देखेंगे कि हिन्दी भाषा में शब्दों का अधिक भण्डार है, यह बड़ा प्रबल है और हिन्दी की यह बड़ी सम्पत्ति है। इस प्रकार से आप की ग्रन्थमाला की शब्दावली का भण्डार भरा हुआ है। सन् 1835 से 1858 तक महाभारत का प्रथम अनुवाद हुआ। इसके उपरांत एक विशेष दशा आई। आप जानते हैं कि रीति जो पड़ जाती है, वह छोड़े नहीं छुटती। जब–जब जिस–जिस स्थान में आप देखेंगे, लता वृक्ष के सहारे फैलती पाएँगे। सबसे बड़ा सहारा प्रत्येक भाषा का राजा ही होता है। बिहारी ने जयपुर के महाराज के यहाँ जाकर

अपनी कविताशक्ति का चमत्कार दिखाया। शिवाजी महाराज के आश्रय में भूषण कवि ने अपनी कविताशक्ति का परिचय दिया। एक ओर युद्ध में तलवार नाचती थी, दूसरी ओर उनकी कविता नाचती थी। राजा का आश्रय दो प्रकार का होता है। एक तो प्रत्यक्ष, दूसरा गुप्त। इन दोनों की आवश्यकता है, किन्तु इस समय मैं प्रत्यक्ष को ही लूँगा। जब अँगरेजी गवर्मेंट इस देश में आई, तब उसने बड़ी ही सुव्यवस्था की जिसके लिए उसे सच्चे हृदय से धन्यवाद देना चाहिए। इसने इस देश में ऐसा नियम स्थापित किया जिससे आज इतना बड़ा समारोह हो रहा है। याद रहे कि कोई व्यक्ति चाहे वह ऊँचे घर का बालक ही क्यों न हो, जब गिरता है, तब बुरा गिरता है। यह पवित्र आर्यजाति जो अपनी प्राचीन महिमा से गिरी तो ऐसी गिरी कि फिर से उसका पुनरूद्धार न हुआ। इस आर्यजाति के पतन के कारण इससे महाराष्ट्रों और सिक्खों का अलगाव हुआ। जब से अंग्रेजी गवर्नमेण्ट आई तब से आप देखते हैं कि विद्या की चर्चा बढ़ गई। यंत्रालय आया, साथ ही साथ बड़ी भारी शिक्षा आई। आपने देखा होगा कि अँगरेज लोग अपनी भाषा की कैसी उन्नति करते हैं अँगरेजी गवर्नमेण्ट ने यहाँ आ अँगरेजी विद्या के प्रचार का उपाय किया, साथ–साथ आपकी संस्कृत भाषा की उन्नति का भी पथ प्रशस्त किया। इस काशीपुरी में सबसे पहले क्वींस कॉलेज और संस्कृत कालेज स्थापित हुआ, जिससे हिन्दुओं की भाषा की रक्षा हुई। गवर्नमेण्ट के उत्तम कार्यों का धन्यवाद हम हिन्दू किसी प्रकार कर नहीं सकते और आज जो आपके भारतवर्ष में कुछ जनों में संस्कृत का प्रचार देख पड़ता है, इस काशी ही में धुरंधर पंडित मिलते हैं जिनका सम्मान बड़े–बड़े लोग करते हैं, उसका अन्यतम कारण अंग्रेज सरकार का संस्कृत–प्रचार है। मैरे आपसे इसको सुनकर नहीं कहा है। डॉ0 वालेंटाइन जब प्रिंसिपल थे तब उन्होंने लेख लिखा था कि हमको केवल संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद करके हिन्दी भाषा में प्रचार करना चाहिए; सो उन्होंने अपने समय में जो आवश्यक था वह कर डाला। किन्तु खेद की बात है कि इतना अवसर पाने पर भी हम जगाए जाने से भी आप से आप नहीं जागे। गवर्नमेण्ट की सहायता से भी नहीं जागे। इस प्रान्त में भाषा की उन्नति का बीज सबसे पहले बोया गया था, किन्तु आज उसी प्रान्त की हिन्दी भाषा अपनी और बहनों के सामने मुँह मोड़े खड़ी है। अब 1835 के लगभग आ जाइए। उस समय गवर्नमेण्ट के सरकारी दफ्तरों में फारसी में काम होता था। गवर्नमेण्ट ने 1835 में यह आज्ञा दी कि हिन्दुस्थान की भाषाएँ भी काम में लाई जायँ। इस आज्ञा के फल से इस प्रान्त में उर्दू जारी हो गई; हिन्दी जारी नहीं हुई, इसका फल यह हुआ कि

हिन्दी की बड़ी अवनति हुई। यह सत्य है कि सन् 1844 ई0 में जब टामसन साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर थे, सरकार ने हिन्दी भाषा का पढ़ना–पढ़ाना आरंभ किया। यदि यह न हुआ होता तो आज आपको हिन्दी के जानने वाले इतने भी न मिलते जिनसे लोगों को पढ़ाने का अवसर मिलता। फिर भी अदालतों में हिन्दी के प्रवेश न करने से हिन्दी की उतनी उन्नति नहीं हुई। उर्दू सरकारी दफ्तरों में जारी थी उसी का प्रचार था। फिर भी उर्दू का वैसा प्रचार नहीं हुआ जैसा होना चाहिए था। उर्दू पुस्तकों की उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी बंगाली, महाराष्ट्री और गुजराती की। मैं जानता हूँ कि मुसलमान अब जागे हैं, किन्तु पचास साठ वर्ष तक उन्होंने उर्दू की वैसी उन्नति नहीं की जैसी करनी चाहिए थी। उर्दू की उन्नति में बाधा पड़ने का एक कारण यह है कि उर्दू, विशेष करके वह उर्दू जिसे अधिकतर उर्दू के प्रेमी लिखते हैं, अरबी और फारसी के शब्दों से भरी होती है, जिसके जानने वाले लोग कम हैं और जिसके लिखने वाले लोग भी कम हैं। सन् 1858 में जब गवर्नमेंट ने विद्या के विभाग के नियम बनाए, उन्हीं दिनों स्कूल के लिये हिन्दी पुस्तकें छपवाई और बहुतेरे विद्वानों की सम्मति ली। गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया ने सन् 1873 के लगभग 231 पुस्तकों का संचय किया। गवर्नमेण्ट की सहायता से आदित्यराम जी ने एक दो अनुवाद अंग्रेजी पुस्तकों के किए, राजा शिवप्रसाद जी से सम्मति ली गई। लोगों को इस पर ध्यान देना चाहिए कि हिन्दू मुसलमान दोनों की तरफ से, जहाँ तक मुझको मालूम हुआ है, इन पुस्तकों के पढ़ने वाले अधिक नहीं थे, इसीलिये दोनों की उन्नति नहीं हुई। और प्रान्तवालों ने जिन्होंने अंग्रेजी पढ़ी, उनकी दूसरी भाषा मातृभाषा थी, बंगालियों ने अँगरेजी पढ़ी, उनकी दूसरी भाषा बंगला थी। बंगालियों को ले लीजिए, चार विद्वानों ने बंगाली भाषा को जन्म दिया। पचास वर्ष में बंगला ने ऐसी उन्नति की कि उसको देखकर न केवल संतोष ही होता है बल्कि ईर्ष्या भी होती है। मराठी में ऐसा ही हुआ कि जिन्होंने अँगरेजी पढ़ी उन्होंने साथ–साथ अपनी भाषा भी पढ़ी। गुजरात में वर्नाक्यूलर सोसाइटी बनी। संस्कृत से अनुवाद करना आरम्भ किया गया, उनकी भाषा की पुस्तकें जितनी बिकने लगीं, वह सभी को मालूम है। अनुवाद का अंत नहीं। आज ऐसा होता है कि अँगरेजी भाषा में जो अच्छी पुस्तकें छपती हैं, उनका अनुवाद हो जाता है। इधर हिन्दू, मुसलमान, काश्मीरी, कायस्थ हमारे सब भाइयों ने सिर्फ उर्दू लिखना आरम्भ किया। 'गुलजारे नसीम' पंडित दयाशंकर नसीम ने लिखी। हिन्दुओं को यह तो शौक हुआ कि वह लिखें लेकिन हिन्दी में लिखने का शौक नहीं हुआ। पंडित रतननाथ सरशार ने 'फिसानये आजाद'

लिखक उर्दू भाषा को अनमोल हार पहना दिया। पर हिन्दी जाननेवालों को उस हार का पता नहीं कि वह कैसा है, मूँज का हार है या किसका। यह सत्य है कि मुसलमान कवियों ने हिन्दी भाषा की भी सेवा की है। मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत लिखा है, जब तक हिन्दी भाषा रहेगी उनका नाम रहेगा। किन्तु मैं आपको यह दशा दिखलाता हूँ कि काश्मीरी भाइयों ने जो लिखा वह उर्दू में। हमारे हिन्दू भाइयों में कायस्थ भाइयों ने बहुत समय से बहुत कुछ लिखा किन्तु वह भी उर्दू में। उन्होंने विज्ञान काव्य की कितनी ही पुस्तकें लिखीं। हिन्दू मुसलमानों द्वारा उर्दू की उन्नति का यत्न किया गया सही, किन्तु हमें तो बंगला की उन्नति और वृद्धि से संतोष होता है। मराठी गुजराती से भी ऐसा ही होता है। वहाँ विद्या सरस्वती आप ही आप चली आई। इधर हिन्दी के लिये काम करने वाले नहीं। यह दशा आपकी है। 1835 और 58 से पहले आपकी हिन्दी भाषा अपनी माँ की सुन्दर छवि को लिए हुए अपने भण्झर को भरे आनन्द के साथ बैठी हुई आपको देखती है। 1835 और 58 के बाद इसकी और बहनें आगे बढ़ गई, यह जहाँ की तहाँ रह गई। कहते हुए दुःख होता है कि जिस हिन्दी के लिखने वालों में चंद कवि तुलसीदास, सूरदास, बिहारीलाल हो गए हैं, बबुआ हरिश्चन्द्र हो गए है, वह हिन्दी आज अपनी बहिनों के सामने आखें नीची किए खड़ी है। हिन्दी के प्रेमियों! तुम्हारे और हमारे लिये यह बड़ी ही लज्जा की बात है। यह सच है कि अँगरेजी कार्यालयों में हिन्दी का प्रचार अधिक नहीं। 1858 में जब राजा शिवप्रसाद विद्यमान थे, उस समय अनेक सज्जनों ने इस बात को कहा था कि सरकारी दफ्तरों में हिन्दी भाषा का प्रवेश हो, किन्तु उस समय यह बात बातों ही में रह गई।

अंत में सर एंटनी मेकडानल का भला हो, उन्होंने यह आज्ञा दी कि कचहरियेां में जो दरख्वास्तें दी जावें वह हिन्दी उर्दू दोनों में लिखी जावें। उस समय से हमलोग हिन्दी भाषा की विशेष उन्नति करने लगे हैं। जब रोगी दुर्बल हो सन्निपात की दशा को पहुँच जाता है, तब पहले उसका ज्वर छुड़ाया जाता है, फिर उसका आहार आदि ठीक किया जाता है, अंत में यह पहाड़ हट गया। किन्तु बड़े धिक्कार और बड़े लज्जा की बात है कि यद्यपि यह पहाड़ हमारे मार्ग से काटकर हटा दिया गया, तो भी हमलोगों ने आज तक इससे पूरा लाभ न उठाया। हम वकील हम मुख्तार, हम व्यवहार करने वाले महाजन और वह लोग जो कचहरी में वकालत करते हैं, और अपने हिन्दू भाइयों के मुकदमें में उनका धन व्यय कराते हैं, हम लोग भी हिन्दी भाषा की ओर से उदासीन हैं। कितने लोग हैं, जो जाति का उपकार करते हैं। कहते हैं कि जाति बिना भाषा जीवित नहीं रह सकती, जैसे

कि नाल के बिना बालक नहीं जीवित रह सकता। किन्तु क्या यह बात सत्य है? जरा बंगाली मराठी आदि को देखिए। हिन्दी भाषा के कितने लोग हैं जिनको इस बात से दुःख और लज्जा होती है कि यह आर्यावर्त देश, जहाँ कि आप देखेंगे कि लाखों लोग ऐसे हैं जो अपनी माँ की बोली से परिचय नहीं रखते। सब आशा उन्नति को छोड़ दीजिए। उन्नति करने वालों के सामने खड़ा होना छोड़ दीजिए। जब तक आप इस लज्जा को न मिटावें, अपनी माँ की बोली न सीखें, तब तक आप मुँह न दिखावें। मातृभाषा के सीखने में कौन लज्जा करता है? अब आप लोग अपने ह्रदय में आज से इस बात का प्रण कर लें कि जब तक आप मातृभाषा को सीख न लेंगे तब तक आप मस्तक ऊँचा न करेंगे। कोई अँगरेज जो अँगरेजी भाषा से परिचित न हो या कोई और देश का पुरूष जो अपने देश की भाषा न जानता हो, क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है? जब हमारी यह दशा है तब क्यों न इस भाषा की दुर्दशा होगी और क्यों न हमको औरों के सामने दुर्बलता स्वीकार करनी पड़ेगी? यह सत्य है कि कुछ लोग अपनी मातृभाषा का काम करते हैं, किन्तु ऐसे लोग कितने हैं? मेरा यह प्रस्ताव नहीं है मेरा यह निवेदन है कि जो हुआ वह हुआ, अब क्या करना चाहिए। आपको यह आवश्यक है कि सरकारी दफ्तरों से जो नकलें दी जाती हैं, उनको आप हिन्दी में लें, जो डिगरियाँ तजबीजें आदि मिलती हैं, उनको आप हिन्दी में लें। यह सब आपके लिये आवश्यक है। गवर्नमेण्ट ने आपको जो अवसर दिया है, उसे आप काम में नहीं लाते। इसके उपरान्त यह भी सत्य है कि आज तक इस कारण से आपके अँगरेजी पढ़नेवालों में केवल उर्दू का अधिक प्रचार है। अब मैं यह आशा करता हूँ और सोचता हूँ कि जब तक यह प्रचार रहेगा, तब तक हिन्दी भाषा की उन्नति में बड़ी रूकावट रहेगी। उर्दू भाषा रहे, कोई बुद्धिमान पुरूष यह नहीं कह सकता कि उर्दू मिट जाय। यह अवश्य रहे और इसके मिटाने का विचार वैसा ही होगा, जैसा हिन्दी भाषा के मिटाने का। दोनों भाषाएँ अमिट हैं, दोनों रहेंगी। उर्दू भाषा के प्रेमी करोड़ों हैं और इस पचास वर्ष में उन्होंने बहुत कुछ उन्नति की है। मौलवी जकाउल्लह साहब, मुहम्मद हुसैन आजाद और देहली के नजीर अहमद को लीजिए, उस शब्दकोष को लीजिए, जो निजाम हैदराबाद में छपकर तैयार हो गया है। हैदराबाद में मुसलमान भाई 25 वर्ष से उर्दू की उन्नति का बड़ा यत्न कर रहे हैं। हमको संतोष और सुख होता है कि मौलवी शिवली के काम से उसकी उन्नति में अधिकता हुई है और उसकी उन्नति हमारे देश की उन्नति है। हम इसकी भलाई चाहते हैं, किन्तु इसी के साथ–साथ हमें यह भी कहना चाहिए कि हिन्दी जानने वाले इस

प्रान्त में बहुत हैं। पिछली मनुष्य गणना से जान पड़ा है कि एक उर्दू जाननेवाला है, तो चार हिन्दी जाननेवाले। हमारे मुसलमान भाई जिनको इसका प्रेम है और जो देशभक्त हैं, जिनसे हमारे देश की सब तरह की उन्नति है, वह उर्दू की उन्नति का यत्न करें और हिन्दी जाननेवाले हिन्दी की उन्नति का। इस देश में हिन्दी भाषा जाननेवालों की कमी नहीं, कोई दस बारह करोड़ हैं। इनकी हिन्दी भाषा की उन्नति करने के लिये हमें क्या उपाय करना चाहिए? जितना अब विचार हो चुका है, उससे आपने यह देख लिया कि भाषाओं की अवस्था में कैसा उलट फेर हुआ और हिन्दी ज्यों की त्यों रही। यह दशा जो हमारी है, उसमें क्या करने की आवश्यकता है। इस बात के विचारने में मैंने आपसे कहा कि राजा के सहारे से बड़ा सहारा होता है। यदि आपको जैसा कि नागरी प्रचारिणी सभा के लिये गवर्नमेण्ट सहारा देती चली आई है, राजसाहाय्य मिले तो काम बहुत कुछ बन जा सकता है। किन्तु बड़े दुःख की बात यह है कि अंग्रेजी गवर्नमेण्ट ने इसका जितना प्रचार करना चाहा था, हमारी अपेक्षा से उसका उतना प्रचार नहीं हुआ। हमलोंगों को जितना करना चाहिए था, उसका सिर्फ कुछ अंश हमने किया। अब यह सम्मेलन ही विचार करें कि इसकी उन्नति का क्या उपाय होना चाहिए।